भारतीय परंपराओं को चुनौती देते विज्ञापन

शोधसार-

वर्तमान के बाजारवादी और उपभोक्तावादी समाज में पूंजीवादी प्रचार तंत्र की एक व्यापक परिघटना के रूप में फैला विज्ञापनों की दुनिया का तिलिस्म लोगों के सिर चढ़कर बोल रहा है। इस बाजारवादी तथा उपभोक्तावादी संस्कृति में शिक्षा, चिकित्सा, कला, साहित्य, संस्कृति, मीडिया, धर्म-खेल, राजनीति सब एक 'प्रोडक्ट' के रूप में परिवर्तित हो चुके हैं और खदीदे-बेचे जा रहें हैं। वैश्विक पूंजी के नियंत्रण ने इनमें अनेक विकृतियाँ पैदा की है। आज बाजार हमारी जरूरतों पर निभर नहीं बल्कि वह खुद हमारी जरूरतें निर्धारित कर रहा है। बाजार जहाँ मनुष्य को अब मात्र एक 'उपभोक्ता' के रूप में देखता है वही विज्ञापन जगत उस उपभोक्ता को विज्ञापित सामानों के अधिकाधिक उपयोग द्वारा ही स्वय को अच्छा, स्मार्ट और आधुनिक साबित करने के लिए उकसाता है। आज विज्ञापन केवल वस्तुओं और सेवाओं की मार्केटिंग का माध्यम भर नहीं है, अपितु पूंजीवाद के एक धारदार औजार के रूप में इसका तेवर उत्तरोत्तर आक्रमक और खतरनाक होता जा रहा है। कुछ भी करके अपने प्रोडक्ट को भौतिक बाजार में ही नहीं बल्कि लोगों के मन-मस्तिष्क में उतारकर उनकी मानसिकता पर वार करना ही अब विज्ञापनों का लक्ष्य बनता जा रहा है। आज विज्ञापन किसी भी विचार या वस्तु को प्रचारित करने के लिए सबसे प्रभावी तरीका बन गया है। सम्प्रेषण के सभी तरीकों में से विज्ञापन की पहुँच सबसे ज्यादा है, प्रभाव सबसे गहरा है और निशाना सबसे सटीक है। वर्तमान में टीवी विज्ञापनों का उद्देश्य ही खरीददार की बची खुची तर्क शक्ति समाप्त कर विनिमय की आंतरिक तर्कबद्धता को अनावश्यक उपभोग की निम्नतम इच्छा में रूपांतरित करना हो गया है। कई उदारपंथी और माक्र्सवादियों द्वारा स्वीकृत इस

विचार के अनुसार अपनी बिक्री बढ़ाने और बाजार में हिस्सेदारी बनाये रखने के लिए विज्ञापदाता कुछ भी कर सकते हैं।भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में अपनी रचनात्मक अभिव्यक्तियों को व्यक्त करने की पूरी आजादी है। लेकिन अभिव्यक्ति की आजादी का यह मतलब कत्तई नहीं है कि कोई किसी की धार्मिक भावनाओं और मान्यताओं को आहत करने की होड़ मे लग जाए। पिछले कुछ वर्षों में प्रतिष्ठित ब्रांडों द्वारा ऐसे विज्ञापन बने हैं जिन्होंने सीधे-सीधे हिन्दू धार्मिक भावनाओं को आहत किया है। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या रचनात्मक अभिव्यक्ति के आड़ में प्रतिष्ठित ब्रांडों द्वारा ऐसा करना उचित हैघ्क्यों इन विज्ञापनों में किसी एक धर्म को ही लक्षित किया जाता है? क्या ऐसा किसी पूर्व नियोजित षड़यंत्र का हिस्सा है? क्या हिन्दी धर्म की सहिष्णुता का गलत फायदा उठाया जा रहा है? ऐसे कई प्रश्नों का विश्लेषण प्रस्तुत शोधपत्र में करने का प्रयास किया जायेगा।

बीज शब्द-

विज्ञापन, संस्कृति, उपभोक्तावादी संस्कृति, ब्राण्ड।

प्रस्तावना-

आज हम उच्च प्रौद्योगिकी के ऐसे दौर में पहुँच चुके हैं, जहाँ अन्तराष्ट्रीय सीमाएं टूट गई है। समूचा विश्व एक 'ग्लोबल विलेज' की अवधारणा के अन्तर्गत एक नई विश्व व्यवस्था कायम करने की प्रक्रिया में लगा है। इस भूमण्डलीकरण युग में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्रों में बहुत तेजी से परिवर्तन आया है निर्यात और आयात के पुराने आंकड़े तेजी से बदल गए। राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय बाजार की प्रतिस्पर्धा में खड़े होने के लिए उत्पाद का प्रचार इस रूप में करने की आवश्यकता होता है, जिससे व्यक्ति के मन-मस्तिष्क और संवेगों को उत्पाद के पक्ष या समर्थन में मोड़कर उसे खरीदने को प्रेरित किया जा सके

और प्रचार का यह दायित्व निभाता है-विज्ञापन। भूमण्डलीकरण के दौर में विकसित देशों के बाजार पर अपना सिक्का कायम करने के लिए उपभोक्तावादी संस्कृति को जिस तरह से फैलाया, उससे यदि किसी क्षेत्र को फायदा मिला है, तो वह विज्ञापन का क्षेत्र ही है। आज बिना विज्ञापन के बाजार के क्षेत्र में प्रवेश करना मुश्किल है। प्रवेश के बाद भी बाजार में बने रहना तथा उत्पाद की मांग को और उसकी विश्वसनीयता को बनाये रखने के लिए विज्ञापनों पर बराबर निर्भर रहना पड़ता है।[1] सार्वजनिक रूप से वस्तुओं की श्रेष्ठता और उपादेयता को सिद्ध करने के लिए विचार प्रस्तुत कर माल बेचने की कला बहुत पुरानी है। अन्तर केवल यह है कि प्राचीन युग में विज्ञापन अपने इतने वैविध्यमय स्वरूप और बहुआयामी भूमिका में सामने नहीं आया था, जिस पर वह 21वीं सदी की शुरुआत से पहले आया। आज विज्ञापन की संस्कृति ने व्यापार जगत में अंतःप्रवेश कर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया है। अब वह व्यापार का अभिन्न हिस्सा है।[2] भूमण्डलीकरण की आँधी और आर्थिक उदारीकरण की नीति के कारण विभिन्न राष्ट्रीय और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के उत्पाद की श्रेष्ठता और उपयोगिताओं को सम्प्रेषण के तमाम सिद्धान्तों के सहारे तथा तरह-तरह के अनेक अपीलों के माध्यम से व्यक्त करके उपभोक्ता की क्रय शक्ति को बढ़ाया है। विज्ञापन उन क्रियाकलापों को समाहित किए हुए है जिसके द्वारा दृष्टिगत अथवा मौखिक सूचनाओं के आधार पर जनता का उद्देश्यपूर्ण अथवा सूचित करने तथा प्रभावित करने की दृष्टि से चयन किया जाता है ताकि वे उत्पादित वस्तु खरीदें अथवा विचारों, व्यक्तियों, व्यापार-चिन्हों या संस्थाओं के प्रति सहमति रखें। इस तरह से आज विज्ञापन 'आधुनिक जीवन-शैली और बाजार संस्कृति की बड़ी शक्तिशाली तथा महत्वपूर्ण अभिव्यक्त के रूप में अपनी पहचान बना रहे हैं। विज्ञापनों ने मीडिया के परंपरागत ढाँचे को तोड़कर उसके चरित्र को बदल दिया है। आज भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया में प्रिंट मीडिया में प्रकाशित विज्ञापन भी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के माल को बेचने के लिए विश्वग्राम की परिकल्पना के

अनुसार, ''वैश्विक संस्कृति का ही सहारा लेते हैं। बहुतराष्ट्रीय कम्पनियों का कोई मूल्य नहीं होता। उनका एक ही उद्देश्य होता है- 'माल बेचों, पैसा कमाओ।' कुल मिलाकर आज मीडिया में विज्ञापन की स्थिति यह है कि वह देश हित, लोकहित अथवा किसी महान उद्देश्य, किसी महान आन्दोलन, किसी भी महान क्रांति के लिए काम नहीं कर रहा है। वह इनमें पैदा होने वाले मूल्यों से भी निकल कर नहीं आ रहा है। अब वह सीधे-सीधे बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के हित से जुड़ गया है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के विज्ञापन धीरे-धीरे क्षेत्रीय जीवन मूल्यों और हजारों साल के संघर्ष से प्राप्त की गई प्रगति तथा सभ्यता को मिटाकर तथाकथित वैश्विक जीवन-मूल्यों का आडंबर रच रहें हैं, जिसमें उपभोक्ता ''पैरानोइया'' का शिकार हो गया है, यानी गुमराह हो गया है। इस प्रकार के विज्ञापनों ने ऐसी वैश्विक संस्कृति को फूलने-फलने का भरपूर मौका दिया है, जिसका अर्थ निश्चित रूप से 'वसुधैव कुटुम्बकम्' नहीं होता। यह तय है कि जिस दिन विज्ञापनों से सृजित तथाकथित वैश्विक संस्कृति दुनिया में यथार्थवादी रूप धारण कर लेगी, उस दिन मनुष्य का समाज मर जाएगा। इस तरह वैश्विक संस्कृति के संवाहक विज्ञापनों ने मीडिया में संघर्ष की चेतना का लोप कर दिया है। आज विज्ञापन के बलबूते पर साँस ले रहा मीडिया भूमण्डलीय प्रक्रिया में व्यापारिक और सांस्कृतिक साम्राज्यवाद के विरूद्ध संघर्ष की चेतना नहीं जगाता, बल्कि उल्टे, 'साम्राज्यवादी घुसपैठ'' के लिए अनुकूल वातावरण का निर्माण कर रहा है।[3]

विज्ञापन और सांस्कृतिक मूल्य-

मानव जीवन को सुचारु एवं समृद्ध बनाने के लिए जिन आचार-विचार का पालन तथा सृजन करना होता है, वे सब संस्कृति के अन्तर्गत आते हैं। संस्कृति समाज के नियमों, प्रतिमानों तथा आदर्शों, मान्यताओं एवं मूल्यों को अपने में समाहित करती हुई युगानुरूप सामाजिक परिवर्तनों में मुड़ती हुई निरन्तर प्रवाहित होती रहती है। सांस्कृतिक मूल्यों का कार्यक्षेत्र सम्पूर्ण मानवीय

जीवन होने के कारण ये मानवीय मूल्यों के पर्यायवाची बन जाते हैं। सांस्कृतिक मूल्य वे हैं जो विश्वासों, भाषाओं, रीति-रिवाजों, प्रथाएं, आचार-व्यवहार, रहन-सहन और रिश्तों के समूह का प्रतिनिधित्व करते हैं जो समाज या लोगों के समूह की पहचान करते हैं। किसी भी समाज, समुदाय या जातीय समूह की सांस्कृतिक विरासत को सांस्कृतिक मूल्यों में संकलित किया जाता है, इसलिए वे प्रत्येक सामाजिक समूह में भिन्न और अनन्य है। संस्कृति को बचाए रखना समाज पर निर्भर है। समाज जितना सभ्य होगा, उसकी संस्कृति उतनी ही सभ्य होगी, क्योंकि संस्कृति ही समाज की आत्मा और उसका व्यक्तित्व होती है। जिस समाज के लोग चरित्रवान, धार्मिक, नैतिक आदि से सम्पन्न होंगे उनके सांस्कृतिक मूल्य भी महान् होंगे। डॉ० नगेन्द्र के अनुसार, 'सांस्कृतिक मूल्यों से अभिप्राय उन तत्वों से है जो सत्य के साधन और सिद्धि में सहायक होते हैं, जीवन की सौन्दर्य चेतना को जागृत एवं विकसित करते हैं।'' पुनीत और पावन लोक संस्कृति की मनोरम झाँकी के साथ ही वहाँ के समाज और जीवन विधि का यथार्थ रूपायन ही सांस्कृतिक अन्वेषण का मुख्य आधार है। वर्तमान में प्रदर्शन, कृत्रिमता, आडम्बर अपरिचयपन हमारे संस्कार के अंग बन गए हैं। 'संस्कृति' शब्द का अर्थ संस्कारों से है। राष्ट्र का आधार उसकी संस्कृति ही होती है। संस्कृति और मूल्य दोनों का सम्बन्ध मनुष्य से है। समाज में सांस्कृतिक मूल्यों का अपना ही महत्व और स्थान है। सांस्कृतिक मूल्य ही एक ऐसी कसौटी है जिस पर सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम से युक्त मानवीय कर्मों की समाज सापेक्षकता को परखा जाता है और वांछनीय तत्वों को ग्रहण योग्य तथा शेष को त्याज्य माना जाता है। ये सांस्कृतिक मूल्य मानव जीवन के श्रेय और प्रेम के जनक, संरक्षक और संवर्धक है। विचार और धारणाओं के रूप में तथा परम्परागत रूप में चले आ रहे रीति-रिवाज, पर्वोत्सव, प्रथाओं तथा लोकजीवन के भिन्न-भिन्न रूपरंगों के संदर्भ में सांस्कृतिक मूल्य, मान्यताएं, धारणाएं नहीं अपितु सामाजिक आवश्यकताएं हैं और एक नागरिक के रूप में ये सभी के पास

होनी चाहिए। हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार, ''सुन्दर से सुन्दर फूल यह दावा नहीं कर सकता कि वह मिट्टी से भिन्न हैं और कोई भी पेड़ यह दावा नहीं कर सकता कि वह मिट्टी से भिन्न होने के कारण एकदम उससे विच्छिन्न है।'' इसी तरह कोई भी आधुनिक विचार यह दावा नहीं कर सकता कि वह परम्परा से या अपनी संस्कृति से एकदम कटा हुआ है। हमारी संस्कृति ही हमें अन्य देशों की संस्कृतियों से अलग करती है। इन मूल्यों के अन्तर्गत सदाचार, देशभक्ति, बलिदान, रीति-रिवाज, प्रथाएं, रहन-सहन, आचार-व्यवहार, परिधान एवं वेशभूषा, लोक-गीत, संगीत-गायन बोली-भाषा आदि का विस्तृत वर्णन भी मिलता है। रीति-रिवाज और परम्परायें भारतीय संस्कृति के अभिन्न अंग होते हैं। कोई भी संस्कृति उसके रीति-रिवाजों से ही जानी जाती है। जिनका विकास समूह में सामाजिक जीवन की समस्याओं का समाधान करने के लिए स्वयं हो जाता है। समनर के अनुसार, ''रीतियाँ अनेक व्यक्तियों द्वारा छोटे-छोटे कार्यों की बहुधा पुनरावृत्ति है जो मिलकर कार्य करते हैं।''[4] सनातन संस्कृति में समाज को संस्कारित करने के लिए संस्कारों का बड़ा महत्व रहा है। जीवन को सुसंस्कारित रखने के लिए समाज में ये सभी परम्परायें सनातन समाज में थी। लोग सत्यनिष्ठ थे, करूणा, त्याग और मानवता लोगों में कूट-कूट कर भरी हुई थी, अब सबके हाथ में मोबाइल है। आभासी दुनिया से आदमी जुड़ा हुआ है। पहले मीडिया के माध्यम से पाठक दुनिया को जानते थे, जिसमें प्रकाशित सामग्री में नैतिकता का भी ध्यान रखा जाता था। नई आर्थिक नीतियों के दौर में गलाकाट प्रतियोगिता के चलते मीडिया के चरित्र में गिरावट ही नहीं, बल्कि अनैतिकता को कानूनी जामा पहनकर पेश किया जा रहा है। मीडिया का एक माध्यम विज्ञापन अश्लीलता, नग्नता, फूहड़ता के अलावा कुछ नहीं देते। इस सुसंस्कृत देश में अपसंस्कृति को बढ़ावा देने वाले विज्ञापनों का एक बहुत बड़े बाजार का हिस्सा है। बाजार व्यक्ति की आवश्यकताएँ पूरा करते थे। बाजार खत्म होते जा रहे हैं, अब बाजार अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उपभोक्ताओं को फँसाता है।

अनेक बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ मॉल के जरिए अपने ग्राहकों को रिझा रही है। बड़े आकर्षक विज्ञापन होर्डिंग, स्कीम देकर लुभा रही है। फैशन के नाम पर अपसंस्कृति को बढ़ा रही है। भारतीय संस्कृति पाश्चात्य बनती जा रही है। जिन व्यवहारों को भारतीय समाज कुछ समय पूर्व तक अपसंस्कृति मानता था, वही अब स्वीकार्य है। क्या यह भारतीय संस्कृति के लिए चुनौती नहीं है?"[5]

माध्यम मंच और संवाद की संस्कृति-

आदिरूप में संवाद का आर्विभाव पृथ्वी पर मानव जीवन के अस्तित्व के साथ ही हुआ। प्रत्यक्ष संवाद के बजाय किसी तकनीक या यान्त्रिक माध्यम जैसे-अखबार, रेडियो, टीवी, इंटरनेट, सिनेमा, विज्ञापन के द्वारा समाज के एक विशाल वर्ग से संवाद कायम करना जनसंचार कहलाता है। सृष्टि के प्रारम्भ से जब से मानव की उत्पत्ति हुई तब से उसने अपनी इच्छाओं, संवेगों, भावनाओं एवं आवश्यकताओं को मूर्त रूप प्रदान करने हेतु हाव-भावों का प्रयोग किया जो कालान्तर में भाषा के रूप में विकसित हुई।[6] पारम्परिक और आधुनिक संचार माध्यमों ने जनता में देश की कलात्मक और सांस्कृतिक विरासत के प्रति समझ पैदा की है। संचार माध्यम चूँकि राष्ट्रीय विरासत और संस्कृति के प्रति जनता को संवेदनशील बनाने वाले उपकरण रहें हैं इसलिए उनके बिना हम भारतीय संस्कृति को नहीं समझ सकते हैं।[7] अपने उत्पादों के प्रचार-प्रसार के लिए विज्ञापन हमेशा से लोकप्रिय रहे हैं। विज्ञापन सामाजिक परिस्थितियों का उपयोग करके आपके रोजमर्रा की स्थितियों और परिदृश्यों को चित्रित करते हैं कि कैसे एक विशेष उत्पाद आपके दैनिक जीवन में फिट बैठेगा। अपने उत्पादों को लोगों तक पहुँचाने का ये एक अच्छा माध्यम है। टीवी पर जितने कार्यक्रम आते हैं उनमें कहीं ज्यादा भरमार विज्ञापनों की रहती है। ये विज्ञापन सपने और सुविधाएं बेचते हैं। बेचने का ढंग जुदा होता है। कुछ विज्ञापन भावनाओं पर वार करते हैं, कुछ सौन्दर्य बेचते हैं तो कुछ मस्ती, मजाक और व्यंग का सहारा लेते

हैं। परन्तु उत्पाद बेचने की होड़ में क्या कुछ विज्ञापन संवेदनशीलता की लकीर को पार कर जाते हैं? विज्ञापन की दुनिया बड़ी तिलिस्मी है। यह कला है, विज्ञान है तो अर्थ व्यवस्था की गति का आधार भी है। विज्ञापनों का वस्तुओं की गुणवत्ता से कोई सरोकार नहीं होता।[8] विज्ञापन महज समानों, मालों, उत्पादों और सेवाओं की 'मार्केटिंग' का उपक्रम नहीं है बल्कि पूरा का पूरा विज्ञापन उद्योग ही स्वयं पूँजीवाद का विज्ञापन है। बल्कि कहना चाहिए कि यह उसका सबसे बड़ा, सबसे कुशल और आज के समय में तो सबसे व्यापक प्रचार केन्द्र है। विज्ञापन पूँजीवादी जीवन शैली, पूँजीवादी संस्कृति, पूँजीवादी बाजार, अर्थव्यवस्था, पूँजीवादी परिवार, पूँजीवादी राजनीति, पूँजीवादी प्रेम, पूँजीवादी अन्तरवैयक्तिक सम्बन्धों, पूँजीवादी मूल्य-मान्यताओं, पूँजीवादी दृष्टिकोण के जश्न के लिए स्वयं पूँजीवाद द्वारा उठाया गया। इस रूप में 'एडवरटाईजिंग' पूँजीवाद का स्वयं पूँजीवाद द्वारा चलाया जाने वाला 'प्रमोशनल कैम्पेन' है। विज्ञापन यत्र-तत्र सर्वत्र है। विज्ञापनों की पहुँच इतनी व्यापक है कि विश्व का शायद ही ऐसा कोई कोना हो जो इनके प्रभाव से अछूता रहा है। विज्ञापनों की सर्वव्याप्ति इस तथ्य का ही प्रमाण है कि विज्ञापन उद्योग पूँजीवाद का एक सशक्त विचारधारात्मक उपकरण तो है ही, साथ ही इसका एक वर्चस्वकारी सांस्कृतिक उत्पाद भी है।[9] पिछले कई वर्षों में यदि हम भारतीय विज्ञापनों को ध्यान से देखें तो वे एक सुनियोजित तरीके से न केवल हमारे धर्म को निशाना बना रहे हैं, अपितु सनातन धर्म की रीढ़ हमारे पारिवारिक संस्था पर ही प्रहार कर रहे हैं।[10] इस लिहाज से विज्ञापन उद्योग पूँजीवाद का एक बेहद खतरनाक, सूक्ष्म और निपुण विचाराधात्मक हथियार है जो लोगों को पूँजीवादी उपभोक्ता संस्कृति का अभ्यस्त बनाता है और बेहद वर्चस्वकारी तरीके से अपने हिसाब से चीजों को देखनें का आदी बनाता है। लोग अनालोचनात्मक तरीके से इस तर्क से सहमत होने लगते हैं कि सामानों और मालों के अधिकाधिक संचय में ही खुशहाल जीवन का मंत्र है। हालाँकि यहाँ एक बात जोड़ देनी विशेष तौर पर

आवश्यक है कि विज्ञापनों के लिए और स्वयं पूँजीवाद के लिए 'उपभोक्ता' की अवधारणा वर्ग-आधारित और वर्गीकृत है और इसकी परिभाषा में मेहनत-मशक्कत करने वाली वह बहुसंख्यक आबादी आती ही नहीं है जो उन समानों या मालों के इस म्बार का सर्जक है जिनका प्रचार ये सभी विज्ञापन करते हुए नज़र आते हैं। यही कारण है कि जहाँ पहले के विज्ञापन बड़े पैमाने पर उत्पादित मालों के बाजार के तौर पर एक अविभाजित उपभोग करने वाली जनता को देखते थे, वहीं आज विज्ञापनों के द्वारा विशिष्ट उत्पादों के 'ब्राण्डस' के लिए उपभोक्ताओं के विशेष वर्गों/खण्डों को लक्षित किया जा रहा है और इसके लिए कई सूक्ष्म और चालाक तिकड़में भिड़ायी जा रही है।[11]

जागरूकता की कला या ब्राण्ड का भला-

भारत एक विविध धर्मों वाला देश है जिसकी विशेषता उसकी विभिन्न धार्मिक प्रथाएं और विश्वास है। भारत की इस आध्यात्मिक भूमि ने कई धर्मों को जन्म दिया है, जैसे हिन्दू धर्म, सिख धर्म और बौद्ध धर्म। भारतीयों को धर्मों में अत्यधिक आस्था है और वो मानते हैं कि यह उनके जीवन को एक अर्थ और उद्देश्य देते हैं। यहाँ धर्म सिर्फ मान्यताओं तक ही सीमित नहीं है बल्कि इनमें नैतिकता, रिवाज, संस्कार, जीवन दर्शन के अलावा और भी बहुत कुछ है।[12] वर्तमान में आधुनिकता और पश्चिमी संस्कृति के प्रचलन के चलते हिन्दू धर्म के सम्बन्ध में लोगों में जानकारी का अभाव बढ़ता जा रहा है। दरअसल हिन्दू धर्म से ही भारतीयता कायम है। हिन्दू परम्परायें आज के समय से विरोधियों के निशाने पर है।[13] पश्चिमी मानसिकता से ग्रसित कुछ लोग सनातन धर्म पर प्रश्न खड़े करने लगे हैं। पिछले कई वर्षों से ऐसे विज्ञापन प्रसारित हो रहे हैं, जो सनातन धर्म की नींव को तोड़ने पर लगे हैं। दशकों से कुछ ताकतें हर हिन्दू मान्यता, त्योहार, रीति-रिवाज, खान-पान पर हमला बोलती रही है, यह उसी का विस्तार है। भारतीय बाजारों में सबसे अधिक क्रय-शक्ति वाला उपभोक्ता वर्ग

हिन्दू ही है। हिन्दू, पर्व, उत्सव भारतीय अर्थव्यवस्था का ईंधन है। इसके बावजूद भारतीय उद्योग जगत सनातन परम्पराओं को आहत कर कमाई करता है। इन विज्ञापनों का उद्देश्य स्पष्ट है-पारिवारिक प्रणाली को जड़ से उखाड़ कर समाप्त करना और सभी को व्यक्तिवाद यानि **Individualism** की ओर आकर्षित करना, जिसके कारण आज पाश्चात्य संस्कृतियों के अनेकों अद्यातों को बहादुरी से सहता है।[14] ''इमेज इज एवरीथिंग, एवरीथिंग इज इमेज''। यानि आपकी छवि, चाहे सकारात्मक हो या नकारात्मक काफी महत्वपूर्ण है। इसका एक अलग ही अर्थ आज के कुछ ब्रांड्स ने धारण कर लिया है, जो सुनकर सुनियोजित तरह से विवादास्पद और नकारात्मक विज्ञापन को बढ़ावा देते हैं, ताकि उनकी कम्पनी विवाद में आए, और उनके उत्पाद अधिक बिके। भावनात्मक से लेकर दैहिक-बौद्धिक तक, भाव-भंगिमाओं को अतिरंजनापूर्ण चित्रण के कारण हमारी सहजता, कोमलता, संवेदना तक प्रभावित हो रही है। हम अपनी ही संस्कृति, संस्कारों, मूल्यों की खिल्ली उड़ाते रहेंगे। बाजार हमारे घर तक तो बहुत पहले ही प्रवेश कर गया था, अब उसने हमारे मनोजगत में भी गहरी पैठ बना ली है। बात केवल कम्पनी की छवि तक नहीं, उसके आर्थिक पक्ष की भी है और आर्थिक नुकसान की बात आती है, वहाँ कोई भी कम्पनी जोखिम उठाने से बचेगी। ऐसे में विवादास्पद और नकारात्मक विज्ञापन शैली सबको नहीं सुहाती। यहाँ कुछ प्रमुख विज्ञापनों का विश्लेषण करने का प्रयास किया जा रहा है जिन पर साम्प्रदायिक वैमनस्य को बढ़ावा देने का आरोप लगाया गया है।[15] जिन पर काफी हंगामा मचा और इसके बाद उन्हें प्रतिबंधित कर दिया गया।

1. फैब इण्डिया - 'जश्न-ए-रिवाज' दीवाली का विज्ञापन

फैब इंडिया ने अपने कपड़ों का प्रचार करने के लिए दीवाली थीम पर एक विज्ञापन निकाला और इसे 'जश्न-ए-रिवाज' नाम दिया। ब्राड के इस प्रयास को 'सांस्कृतिक रूप से अनुचित' बताया गया। सोशल मीडिया पर कम्पनी के

खिलाफ अभियान चलाया गया। लोगों के आपत्ति जताने के बाद कम्पनी में पोस्ट डिलीट कर दिया और प्रमोशनल एड वापस ले लिया। लोगों के मुताबिक कम्पनी हिन्दु त्यौहार में अनावश्यक रूप से धर्मनिरपेक्षता और मुस्लिम विचारधारा को थोप रही है, और इससे उनकी धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँची है। कम्पनी के खिलाफ अभियान चला, लोगों ने जमकर आलोचना की, लेकिन क्या फर्क पड़ता है। ''फैब इण्डिया'' की चर्चा ही हुई और कम्पनी यही चाहती थी।

2. मान्यवर- 'कन्यादान विज्ञापन'-

हिन्दू संस्कृति में कन्यादान को सबसे बड़ा पुण्य माना जाता है। वस्त्रों के प्रसिद्ध ब्रांड 'मान्यवर' ने एक विज्ञापन प्रकाशित किया जिसमें 'कन्यादान' को हिन्दु अनुष्ठान में प्रतिगामी माना गया है और इसके बजाय 'कन्यादान' शब्द का परामर्श दिया गया है, जिससे हिन्दुओं की भावनाओं को ठेस पहुँची है और सोशल मीडिया पर 'मान्यवर' प्रतिष्ठान का बहिष्कार करने की माँग की जा रही है। कुछ ने विज्ञापन को 'फेक फेमिनिज्म्' कहा है। इस पर 'मान्यवर' का दावा है कि 'कन्यादान' विवाह प्रथा को एक नया मोड़ देता है और बेटियों को त्यागने के बजाय उनका सम्मान करने के विचार पर प्रकाश डालता है। विज्ञापन में बेटियों को बोझ के रूप में दिखाया गया है और कन्यादान को उस बोझ से छुटकारे का उपाय। कन्यादान हिन्दू विवाह का एक अभिन्न अंग है। कन्यादान करके माता-पिता अपने जीवन को सफल मानते हैं लेकिन विज्ञापन में कन्यादान की प्रथा को प्रतिगामी बताते हुए हिन्दु विवाह अनुष्ठानों पर हमला किया गया है। कन्यादान पर मौजूद अन्य ग्रंथों के अनुसार, अनुष्ठान के समय किए गए मंत्र, जप अन्य क्रियाएँ दुल्हन को लक्ष्मी के रूप में दर्शाती है। दुल्हन के पिता द्वारा अपनी बेटी को नारायण (दुल्हे) को देने का प्रतीकात्मक कार्य माना जाता है कि वह अपनी बेटी को घर की 'शोभा' बना रहे हैं। कन्यादान को अलग-अलग नाम

से जाना जा सकता है परन्तु सबका औचित्य एक ही है। विवाहोपरान्त कन्या को विदा करना। फिर ऐसे विज्ञापनों में हिन्दु धर्म को ही क्यूँ लक्षित किया जाता है।

3. 'नायका' का नवरात्री पर विज्ञापन-

कॉस्मेटिक्स ई-कॉमर्स की कम्पनी नायका ने इस वर्ष अक्टूबर 2021 में शुभ नवरात्री के अवसर पर कण्डोम और ल्यूब पर 40 प्रतिशत की छूट की घोषणा की क्यूँकि इसके जैसी कम्पनियाँ हिन्दुओं के त्यौहारों को मौद्रिक लाभ के अवसरों के रूप में देखती है। उनको हिन्दुओं की भावनाओं से कोई सरोकार नहीं है। ऐसा पहली बार नहीं हुआ है कि नवरात्री के पवित्र त्यौहार को यौन सुख से जोड़ने की कोशिश की गई है। विभिन्न कम्पनियाँ इस दौरान कण्डोम की बिक्री से मुनाफा कमाने के लिए ऐसे विज्ञापनों का सहारा लेती आयी है। इसकी नजरों में नवरात्री एक धार्मिक पर्व न होकर एक नाच गाने का त्यौहार है। इनकी यही सोच इनके विज्ञापनों में दिखाई देती है।

4. 'डाबर'-समलैंगिक जोड़े के करवाचौथ का विज्ञापन

अक्टूबर 2021 में डाबर के ब्यूटी ब्रांड फेम ने एक विज्ञापन जारी किया। विज्ञापन की थीम हिन्दुओं का त्यौहार करवाचौथ था। विज्ञापन में एक समलैंगिक जोड़े को करवाचौथ का व्रत रखते और एक-दूसरे को छलनी में देखना दिखाया गया है। करवाचौथ हिन्दु महिलाओं के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण त्यौहार होता है और इस विज्ञापन के जरिए हिन्दु मान्यताओं का मजाक उड़ाया गया है। 'डाबर' ने समलैंगिकता की पैरवी करते हुए इस उत्सव का अवसर बना डाला। सनातन त्यौहार, जो महिलाएं अपने पति की लम्बी आयु की कामना के साथ रखती है। बिना किसी वर्गभेद के चाहें किसी परिवेश की हो। विवाद बढ़ने पर डाबर ने बाकी कम्पनियों की तरह माफी मांग ली और विज्ञापन हटा दिया, लेकिन करवाचौथ के बाद। यानी डाबर ने अपना काम पूरा किया और फिर कदम

वापस खींच लिए। सनातन विज्ञापन आयुर्वेद के मूल से निकली डाबर जैसी परम्परागत वैदिक उत्पाद बेचने वाली कम्पनी को इसकी जरूरत क्यों पड़ी?

5. तनिष्क- 'एकत्वम्' आभूषण का विज्ञापन-

लोकप्रिय भारतीय आभूषण ब्रैंड 'तनिष्क' ने अपने नए कलेक्शन एकत्वम की शुरुआत की जिसका विज्ञापन यूट्यूब पर पोस्ट किया गया। तनिष्क ने अपने एड में हिन्दू-मुस्लिम परिवार के बीच शादी के बंधन को दिखाया था जिसे सोशल मीडिया पर लव जिहाद का नाम दिया गया। इस विज्ञापन को लेकर विवाद इतना बढ़ा कि आखिर में तनिष्क को वह एड यूट्यूब से हटाना पड़ा। 43 सेकेण्ड का ये विज्ञापन- 'एकत्वम' (यानी एकता) नाम की एक ज्वेलरी रेंज के प्रचार-प्रसार के लिए तनिष्क के सोशल मीडिया चैनलों पर पोस्ट किया गया था। पहले कम्पनी ने यूट्यूब और फ़ेसबुक पर लाइक/डिस्लाइक और कमेंट के आॅप्शन बन्द किए, फिर वीडियो को हटा दिया। साथ ही इस विज्ञापन को रिवर्स यानी उल्टा करके दिखाने की बात पर जोर देते हैं।

6. मैनफोर्स- नवरात्री के पोस्टर पर कण्डोम का विज्ञापन-

गुजरात के विभिन्न शहरों में मैनकाइंड फार्मा ने नवरात्री उत्सव को चिन्हित करते हुए पाँच सौ सार्वजनिक होर्डिंग लगाए। होर्डिंग का शीर्षक था- ''आ नवरात्री रमों परंतु प्रेम थी'' (यह नवरात्री खेलों, लेकिन प्यार के साथ), जिसमें अभिनेत्री सनी लियोन का चित्र अंकित था। इस विज्ञापन का थीम नवरात्री के उत्सव के दौरान कण्डोम के उपयोग का था। नवरात्री, जिस समय हिन्दू धर्म के लोग पूरी आस्था और भक्ति के साथ माँ दुर्गा की पूजा अर्चना करते हैं, ऐसे में मैनकाइंड फार्मा द्वारा प्रदर्शित यह विज्ञापन उनकी किस मानसिकता को दर्शाता है? क्या यह विज्ञापन नवरात्री के त्यौहार की पवित्रता का अपमान नहीं है? इस विज्ञापन के विरोध में अखिल भारतीय व्यापारियों के परिसंघ के नेतृत्व में

सार्वजनिक प्रदर्शन आयोजित किए गए। अन्ततः मैनफोर्स ने खेद व्यक्त करते हुए अपने होर्डिंग को तत्काल हटा लिया।

जावेद हबीब- हिन्दू धार्मिक प्रतीकों का बाल कटवाने का विज्ञापन-

साल 2017 में हेयर स्टाइलिस्ट जावेद हबीब ने हिन्दू देवी-देवताओं का अखबार में एक विज्ञापन निकाला, यह विज्ञापन दुर्गा पूजा के समय प्रकाशित हुआ। इस विज्ञापन में हिन्दुओं के धार्मिक प्रतीकों- माँ दुर्गा अपने बच्चों कार्तिक, माता लक्ष्मी, माता सरस्वती और श्री गणेश के साथ जावेद हबीब के सैलून में बाल कटवाते, पैसे गिनते और मेकअप करते दिखाया गया था। विज्ञापन का शीर्षक था, 'भगवान भी जेएच सैलून जाते हैं।'' कइयों को विज्ञापन की यह क्रिएटिविटी पसंद नहीं आई और उन्होंने सोशल मीडिया पर जावेद हबीब को ट्रोल करना शुरु कर दिया। बाद में विवाद बढ़ता देख हेयर स्टायलिस्ट हबीब ने ट्वीटर पर एक वीडियो साझा कर सार्वजनिक रूप से माफी मांग ली।[16]

लेकिन क्या बात इतनी ही है? कॉर्पोरेट और विज्ञापन जगत के लिए यह जाँचा-परखा हथकंडा बन चुका है। असल में हर कम्पनी की अपनी प्रेरणाएं हैं, मजबूरियाँ हैं, लेकिन लक्ष्य साझा है। लक्ष्य है हिन्दू, उसकी आस्था, प्रतीक, मान्यताएं, पर्व और उद्देश्य है, अपने उत्पाद का प्रचार। कुछ इस तरह से प्रचार कि यह जन-जन तक पहुँचे। मौजूदा आर्थिक आंकड़ों पर गौर कीजिए तो भारत में त्यौहारों, आयोजनों का मौसम शुरु होते ही आर्थिक सुस्ती गायब हो जाती है। जीएसटी से लेकर पीएमआई, सब रिकार्ड स्तर पर है और दीवाली के बाद के अनुमान तो भारत की अर्थव्यवस्था को ऊँचाईयों पर ले जाने वाले हैं। त्यौहारों में सबसे ज्यादा हिन्दुओं का पैसा, हिन्दू त्यौहारों पर बाजार में जाता है, तो क्या बाजार को हिन्दू, पर्व, इण्डिया, सर्फ एक्सल जैसे तमाम ब्रांड कैसे ये सोच सकते हैं कि वे हमारे धर्म, परम्परा, रीति-रिवाज, त्यौहार का मजाक बनाकर हमें ही

सामान बेच रहें हैं। दशकों से कम्पनियाँ भारत में हिन्दू परम्पराओं, त्यौहारों और आस्था पर चोट करती रही है, लेकिन अब सोशल मीडिया की दुनिया है।[17] विरोधी सोशल मीडिया पर कम्पनी, उसके प्रोडक्ट या किसी सेलेब्रिटी का बहिष्कार करने के लिए हैशटैग का इस्तेमाल करते हैं। विशेषज्ञों का कहना है कि कम्पनियाँ इसलिए झुकती है क्योंकि उन्हें अपनी छवि और ब्रांड की फिक्र होती है। विज्ञापन फिल्म निदेशक प्रहलाद कक्कड़ के अनुसार ''विज्ञापन इसलिए वापस लिए जाते हैं क्योंकि ब्रांड डरे हुए हैं। विवाद में पड़ने से उनकी नकारात्मक छवि बनती है। वे यह खतरा नहीं उठा सकते।''[18] डाबर इण्डिया का विवाद जैसे ही शुरु हुआ, कम्पनी के शेयर में एक कारोबारी सत्र में डेढ़ प्रतिशत की गिरावट देखने में आई। तनिष्क ने जब लव-जिहाद से प्रेरित विज्ञापन बनाया था, तब टाइटन के शेयर में एक दिन में ढाई फीसदी की गिरावट आई थी। सर्फ एक्सल के विज्ञापन का भी हिन्दुस्तान यूनीलीवर के शेयर पर असर देखने में आया था।[19]

इससे इतर बीते वर्षों में भारतीय विज्ञापनों को उनके काॅनसेप्ट और दूरदर्शिता के लिए काफी ख्याति मिली है। डिजिटल मीडिया वेबसाइट शी द पीपुल की संस्थापक शैली चोपड़ा कहती है कि विज्ञापन किसी संदेश के लिए माध्यम का काम करते हैं। इनमें लोकप्रिय विचारों को बदलने की क्षमता होती है। हालांकि सिर्फ प्रोग्रसिव दिखने के लिए कोई बात कहना अलग बात है। दक्षिणपंथी विचारधारा के समर्थकों को लगता है कि एक वर्ग ऐसा है जिसे हिन्दुओं और हिन्दुत्व को अपमानित करने में आनन्द आता है। इस तरह के विवाद खड़ा करने वाले विज्ञापनों के पीछे विश्व हिन्दु परिषद के राष्ट्रीय प्रवक्ता विनोद बंसल षड़यंत्र देखते हैं। वे कहते हैं, ''यह सस्ती लोकप्रियता है। अतीत में भी ऐसा हुआ है। कम्पनियों को आखिरकार माफी मांगनी पड़ी। हर समुदाय की संवेदनाओं का सम्मान किया जाना चाहिए।''[20] विज्ञापन इस मायने में पूँजीवादी

प्रचारतंत्र की एक विशिष्ट परिघटना है, जो बेहद विचारधात्मक है, जो महज वस्तुओं और सेवाओं की मार्केटिंग का औजार मात्र नहीं है, बल्कि एक खास तरीके से चीजों को देखने और सोचने का नजरिया देता है, जो मासूमियत से भरकर और परमार्थ से प्रेरित होकर लोगों को बेहतर उपभोक्ता चयन प्राप्त करने में मदद करता है बल्कि एक खास तरीके से पूँजीवाद और पूँजीवादी जीवनशैली के समर्थन में 'ओपीनियन बिल्डिंग करता है। इस लिहाज से, सिर्फ अर्थतंत्र में अपनी भूमिका की दृष्टि से ही नहीं बल्कि समाज में शासक वर्गों द्वारा इस्तेमाल में लाये जाने वाले विचारधात्मक, सांस्कृतिक औजार के रूप में भी विज्ञापनों के पीछे की राजनीति को समझना आवश्यक हो जाता है। विज्ञापन बनाने वालों की मंशा इन सामाजिक मुद्दों की दुम पकड़कर अपने धंधे को आगे बढ़ाने की रहती है, जिस तरह कोई माल बेचा जा सकता है उसी तरह विचार भी बेच दिया जाता है।[21]

विज्ञापनों की प्रभावकारिता सम्बन्धी प्रेक्षण-

लैटिन भाषा से मिले शब्द **'Advert'** का अर्थ होता है **'Turn the mind to'** मन को बदलने के सक्षम साधन के रूप में सालों से स्थापित हुए। इस माध्यम का उपयोग समाज के कुछ विशेष वर्ग के लोग पैसा खर्च करके अपने फायदे के लिए करें यह अत्यंत स्वाभाविक है। निवेश, उत्पादन, बिक्री, मुनाफा और पुनः निवेश करके अपने व्यवसाय का विस्तार करने की प्रक्रिया में विज्ञापन का उपयोग करके स्वयं निश्चित किये हुए लक्ष्यांक को सिद्ध करने के लिए मानव मन को अपने उत्पाद, विचार, सेवा की ओर केन्द्रित करने के प्रयास करता है और वहीं पर, उसी मोड़ पर आर्थिक, सामाजिक और मानसिक गतिविधि होती है।[22] आखिरकार विज्ञापन इतने प्रभावशाली क्यों होते हैं? पहला कारण है दुहराव। एक 30 सेकेण्ड का विज्ञापन लगातार दुहराव के जरिये लोगों के मस्तिष्क पर निरन्तरता के साथ प्रभाव छोड़ता रहता है। दिन में सैंकड़ों बार

आने वाले में विज्ञापन इतनी सूक्ष्मता और गहराई से काम करते हैं कि हमें पता भी नहीं चलता कि हम कहीं न कहीं अवचेतन तौर पर उन मूल्यों से 'रिलेट' करने लगते हैं जिनका प्रचार इन विज्ञापनों में हो रहा होता है। विज्ञापनों में दर्शायी गयी मूल्य-व्यवस्था को सहज बोध में तब्दील कर दिया जाता है और हम उनमें यकीन करने लगते हैं। हम जाने-अनजाने उनके अनुरूप बर्ताव भी करने लगते हैं। एक बार भी उउस पर प्रश्न किये बिना। हम कब विज्ञापनों में प्रयोग किये जाने वाले जिंगल गुनगुनाने लगते हैं या फिर उनके स्लोगन और टैगलाइन दोहराने लगते हैं, हमें पता भी नहीं चलता।

दूसरा विज्ञापन इस रूप में भी प्रभावकारी है कि वे हमसे किसी तरह की सक्रिय भागीदारी की माँग नहीं करते हैं। विज्ञापनों को देखते वक्त न तो आपको अपने समय का ही और न ही अपने भावनओं का ही निवेश करना पड़ता है। एक-दो घण्टे लम्बी फिल्म या एक-डेढ़ साल तक चलने वाला सोप आॅपेरा आपसे लगातार सक्रिय भागीदारी और निवेश की मांग करता रहतात है। इस रूप में विज्ञापन अन्य पूँजीवादी प्रचार माध्यमों से ज्यादा प्रभावकारी और वर्चस्वकारी है। जो काम दो घण्टे की फिल्म नहीं कर सकती वह एक 30 सेकेण्ड का विज्ञापन कर देता है।

तीसरा, विज्ञापन महज़ सामानों और उत्पादों की मार्केटिंग का माध्यम मात्र नहीं है बल्कि पूँजीवाद का एक सांस्कृतिक उत्पाद भी है और इस रूप में भी विज्ञापनों का असर लम्बे समय तक बना रहता है। इस मायने में विज्ञापनों का महत्व और उनकी ताकत इस बात में निहित है कि उनका प्रभाव आर्थिक तो होता ही है लेकिन उससे कहीं अधिक सांस्कृतिक और विचारधात्मक होता है। यह उपभोक्ताओं के खरीददारी से जुड़े लघुकालिक फैसलों को जितना प्रभावित करता है, उससे कहीं ज्यादा उनके विचारों और दीर्घकालिक व्यवहार पर असर छोड़ता है।

विज्ञापन प्रभुत्वशाली पूँजीवादी विचारधारा को बनाये रखने में भी अहम् सामाजिक और सांस्कृतिक भूमिका निभाते हैं। इसके अतिरिक्त पूँजीवादी संस्कृति, मूल्य-मान्यताओं और तौर-तरीकों को उत्पादित और पुनरुत्पादित करने का 'लोकेशन' भी है। लेकिन इसके साथ ही यह पलटकर तमाम सांस्कृतिक मूल्यों को खुद भी प्रभावित करता है और सामाजिक भूमिकाओं को नये तरीके से परिभाषित करने का प्रयास करता है।

इसके अतिरिक्त कई तरह के विज्ञापन हमें पूँजीवाद के मूलमंत्र यानी कि पूँजी संचय, बचत और निवेश की हिदायत देते रहते हैं। विज्ञापन हमारे भय और चिन्ताओं का इस्तेमाल जमकर करते हैं। वास्तविक जीवन में व्याप्त भय और असुरक्षा की भावनाओं को जो खुद पूँजीवाद की 'चेमत' है, विज्ञापनों द्वारा खुलकर भुनाने की कोशिश की जाती है।

विज्ञापन उद्योग अपना सारा ध्यान और समस्त ऊर्जा मध्यवर्ग पर केन्द्रित करता है, क्योंकि एक मा ॅडल और आदर्श उपभोक्ता वही हो सकता है। इसके साथ ही विज्ञापन फन्तासी और एक आभासी यथार्थ की निर्मित भी करते हैं। जिस सुख और सुरक्षा का अभाव वास्तविक जीवन में है, उसकी भ्रामक छवियाँ विज्ञापनों में सर्वविद्यमान है। यह अन्तरविरोध हर क्षण सक्रिय रहता है। साथ विज्ञापनों में यथार्थ का चयनात्मक चित्रण किया जाता है और कहीं-कहीं तो यथार्थ को सर के बल ही खड़ा कर दिया जाता है। विज्ञापनों का संसार आमतौर पर वास्तविक संसार से मेल नहीं खाता है।

विज्ञापनों में मालों के सौन्दर्यीकरण और कला एवं सौन्दर्यशास्त्र के मालकरण का अभूतपूर्व मेल देखा जा सकता है। विज्ञापनों में सौन्दर्यशास्त्र की सबसे उन्नत तकनीकों का इस्तेमाल न सिर्फ मालों को सुन्दर और वांछनीय बनाकर उन्हें बेचने के लिए किया जाता है बल्कि उपभोक्तावाद को एक तौर-

जिन्दगी के रूप में अपनाने के प्रचार के लिए भी किया जाता है।

विज्ञापन पूँजीवादी व्यक्तिवाद से जुड़ी छवियों को एक आदर्श के रूप में पेश करते हैं। इन छवियों में व्यक्तिगत गतिशीलता (**Individual Mobility**) सेल्फ मेंड व्यक्तित्व, आत्मकेन्द्रित-आत्ममुग्ध अस्तित्व पर जोर होता है। इन छवियों को बड़े पैमाने पर विज्ञापनों के जरिये बेचा जाता है और लोगों पर आरोपित किया जाता है।

विज्ञापन न सिर्फ अर्थव्यवस्था में अहम् भूमिका अदा करते हैं बल्कि विचाराधारात्मक उपकरण के रूप में पूँजीवादी दृष्टिकोण, मनोविज्ञान और संस्कृति का बेहद चालाकी और बारीकी के साथ प्रचार-प्रसार भी करते हैं। विज्ञापन अत्यंत वर्चस्वकारी तरीके से एक खास नज़रिये से सोंचने के लिए लोगों (जिसे कि वे महज़ उपभोक्ता के रूप में देखते हैं) की सहमति लेने का काम करते हैं। लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि न तो प्रकृति में और न ही समाज में कोई भी प्रक्रिया या परिघटना एकाश्मी तरीके से चलती रहती है। विज्ञापनों के दर्शक महज निष्क्रिय ग्रहणकर्ता नहीं होते बल्कि सचेतन और सक्रिय अभिकर्ता भी होते हैं। विज्ञापनों के बाहर विद्यमान वास्तविक दुनिया लोगों को विज्ञापनों में निर्मित की गयी कृत्रिम या फन्तासी की दुनिया की असलियत दिखा देती है। लोग किसी भी सांस्कृतिक उत्पाद का एक गैर-आलोचनात्मक पाठ कर सकते हैं, तो वे इसका आलोचनात्मक पाठ भी कर सकते हैं। जैसा कि स्टुअर्ट हॉल ने दिखलाया है, ''जब लोग अपने जीवन की भौतिक और वास्तविक सामाजिक स्थितियों से प्रस्थान करते हुए विज्ञापनों द्वारा प्रक्षेपित चित्रों और बिम्बों को देखते-समझते हैं तो बजाय उसके प्रभाव में आने के वह उनके प्रति घृणा से भी भर सकते हैं और उसके प्रति उपेक्षा का दृष्टिकोण भी अपना सकते हैं।'' बावजूद इसके आज विशेष तौर पर मध्यमवर्ग के विभिन्न संस्तरों में संस्कृति उद्योग विज्ञापन के जरिये सबसे सूक्ष्म और

कुशल तरीके से अपने विचारों, मूल्य-मान्यताओं, अर्थ-प्रणालियों का प्रचार-प्रसार करते हैं और इस रूप में समाज में विचारधारात्मक प्रभुत्व को स्थापित करने का प्रयास करते हैं। चूँकि यह घर-घर में घुसे टेलीविजन के माध्यम से लोगों के दिमाग में प्रवेश करता है और अन्तहीन दुहराव के जरिये अपने द्वारा प्रसारित संदेश को रेखांकित करता रहता है, इसलिए इसका प्रभाव दूरगामी और गहरा होता है। इसका प्रभाव इसलिए भी दूरगामी और गहरा होता है क्योंकि आज प्रचार उद्योग बेहद कुशल और सूक्ष्म तरीकों से और बेहद उन्नत तकनीक और सांस्कृतिक माध्यमों के ज़रिये अपने प्रचारों का निर्माण कर रहा है।[23]

निष्कर्ष-

ये वो दौर है जब ब्रांड्स को अपने एसी वाले दफ्तर से बाहर निकलना चाहिए और समझना चाहिए कि अच्छा कैंपेन चलाने के लिए एक फैंसी लैपटॉप और बीयर की बोतल हाथ में पकड़ना काफी नहीं है। सनातन धर्म से जुड़े विज्ञापनों को बनाने से पहले उससे जुड़ी हर परम्परा पर गम्भीर शोध करें। विज्ञापनों में ऐसी समस्याएँ तभी पैदा होती है जब धर्म को लेकर किसी में कम समझ हो और वो शब्दों का अर्थ संदर्भ के अलावा अनुवाद के माध्यम से खोजने का प्रयास करें। जैसे बिना 'धन' का अर्थ जाने उसे संपदा से जोड़ दिया जाता है। भारत का संविधान प्रगतिशील विचारों को तथा वैचारिक सोच को प्रेरित करता है। संविधान के आर्टिकल 51(C) में प्रदान किया गया है कि भारत के हर व्यक्ति का यह परम कत्तव्य है कि वह वैज्ञानिक सोच का पालन करें और उसका प्रचार करें। भारत का संविधान हर तरह के जाति, धर्म, लिंग, भाषा, वंश इसके आधार पर भेदभाव के खिलाफ है उसकी सराहना करनी चाहिए। पूँजी के बल पर सहूलियत के साथ अपनाई गई यह प्रगतिशीलता रुढ़िवाद को रंगीन भले ही कर देती है, लेकिन वास्तव में वह पीढ़ियों से चला आ रहा शोषण ही होता है। प्यार, रिवाज और संस्कृति बाजार के लिए खरीददारी और मुनाफे का एक

जरिया बन गया है। पूँजीवाद ने रुढ़िवादी दकियानूसी रिवाजों को बाजार से जोड़ दिया है, जिसमें खरीददारी, उपहार और भव्यता आ गई है। प्यार के बाज़ार पर दक्षिणपंथ प्रश्न अवश्य उठाता है लेकिन रिवाज और परम्परा के नाम पर वह बाजार को बाहों में भी भरता है। सुविधाभोगी वर्ग के इस खेल में सामाजिक परिस्थितियाँ गर्त में जा रही है। वर्चस्व के खेल को भावनात्मक पहलू में डालकर बाज़ारवाद अपने मुनाफे की योजनाएं बना रहा है और समाज इस खेल में उसके रास्ते पर चलकर रिवाजों की बेड़ियों में बंधता जा रहा है। वास्तव में विज्ञापन एक सशक्त माध्यम है जो समाज में स्थापित रुढ़िवादी वर्जनाओं को खत्म करने में मदद कर सकता है। कन्यामान की लाइन जितनी प्रोग्रेसिव सोच के साथ लिखी गई है कि उनको जाहिर करने के लिए उसी सोच की आवश्यकता है। सजी संवरी मंडप में दुल्हन बनी आलिया भट्ट कन्यादान पर तो प्रश्न करती है, लेकिन शादी के पितृसत्तात्मक ढाँचे के तहत। बाजार और विज्ञापन के क्षेत्र में प्रोग्रेसिव होकर भावनात्मक रूप से कुछ बातें समय-समय पर उठाई जाती रही है। कन्यादान की जगह कन्यामान कहना धूम-धड़ाके वालों 'इंडियन वेडिंग' को ही प्रमोट किया जा रहा है। बाजारवाद ने भारतीय रीति-रिवाज को न केवल बढ़ावा दिया बल्कि रुढ़िवादी पितृसत्तात्मक परम्पराओं को विरासत कहकर और अधिक अपनाने पर जोर दिया है। इस प्रकार आधुनिक चलन, लोकप्रियता एवं बेजोड़ प्रभावशीलता के बावजूद विज्ञापन का अंध-समर्थन प्रत्येक दृष्टि से गलत है। हमें यह समझना ही होगा कि "निजी लाभ के लिए समाज की संवेदना और भावनाओं को आहत करना सही नहीं है। इससे समाज में तरह-तरह की कुंठा, अवसाद और तनाव उत्पन्न होते हैं जिससे राष्ट्रीय मानव-संसाधन का उपयोग या कि उनकी क्षमता-शक्ति-ऊर्जा का प्रदर्शन उपयुक्त तरीके से नहीं हो पाता है। सामाजिक सन्दर्भों में विज्ञापन से मर्यादित आचरण की अपेक्षा की जाती है। यह माना जाता है कि वह समाज में सुविचारों, सुशीलता का नैसर्गिक प्रोत्साहन करेंगे। विशेष तौर से मानवीय शुचिता को कायम रखना अत्यावश्यक है। अन्यथा

बाजार की चंगुल में फँस अपने लोकतंत्र को विज्ञापनी अखाड़े में तब्दील कर देना अपनी ही हाथों अपनी सम्प्रभुता पर चोट करना है।

सन्दर्भ-

1. शर्मा, कुमुद, विज्ञापन की दुनिया, प्रतिभा प्रतिष्ठान, संस्करण 2010, पृ॰ 7.
2. शर्मा, कुमुद, विज्ञापन की दुनिया, प्रतिभा प्रतिष्ठान, संस्करण 2010, पृ॰ 28.
3. शर्मा, कुमुद, विज्ञापन की दुनिया, प्रतिभा प्रतिष्ठान, संस्करण 2010, पृ॰ 29, 34, 35.
4. लाल रोशन एवं सिन्धु डॉ॰ कामराज, नागार्जुन के उपन्यासों में सांस्कृतिक मूल्य, अपनी माटी, 30 मार्च 2022.
5. हेमंत सिंह, 1991 की नयी आर्थिक नीति, जागरण जोश, 21 मार्च 2016.
6. आर्य कुमार अमरेन्द्र, स्पन्दन की कलात्मक अभिव्यक्ति, मीडिया नवचिंतन, अप्रैल-जून 2016, पृ॰ 43.
7. चैबे, कृपाशंकर, संचार माध्यम और भारतीय संस्कृति, हिन्दी समय।
8. भावनाओं से खिलवाड़ करते हैं विज्ञापन, बीबीसी न्यूज हिन्दी, 8 नवंबर 2012.
9. शिवानी, पूँजीवाद में विज्ञापनों की विचारधारा और पूँजीवादी विचारधारा का विज्ञापन, नान्दीपाठ-3, अप्रैल-जून 2016.
10. पाण्डेय अनिमेश, हिन्दु धर्म के मूल को तोड़ने का लक्ष्य रखने वाले कुछ विज्ञज्ञपन, क्या आपने भी इन्हें देखा है? टिफपोस्ट, 23 सितम्बर 2021.
11. शिवानी, पूँजीवाद में विज्ञापनों की विचारधारा और पूँजीवादी विचारधारा का विज्ञापन, नान्दीपाठ-3, अप्रैल-जून 2016.
12. भारत में धर्म, मैप ऑफ इण्डिया, 24 जुलाई 2018.
13. जोगी अनिरूद्ध, 'इन 10 तरह से होता है, हिन्दू धूं का अपमान, करेंगे तो पछताएंगे, वेब दुनिया, 2 अप्रैल, 2019.

14. पाण्डेय अनिमेश, हिन्दु धर्म के मूल को तोड़ने का लक्ष्य रखने वाले कुछ विज्ञज्ञपन, क्या आपने भी इन्हें देखा है? टिफपोस्ट, 23 सितम्बर 2021.

15. पाण्डेय अनिमेश, ब्रैंड विवादास्पद और नकारात्मक एड को जानबूझ कर बढ़ावा देते हैं, क्योंकि वे ज्यादा बिकते हैं, टिफपोस्ट, 19 अक्टूबर 2021.

16. सिंह, राज, सनातन धर्म, हिन्दु भावनाओं को आहत करते प्रतिष्ठित ब्रांड, ब्लॉगमंत्री, 24 नवम्बर, 2021.

17. त्यागी, मृदुल, संस्कृति की जड़े काटेंगे और जेब भी, पा०चजन्म, नवम्बर 1, 2021.

18. राम, लक्ष्मी देव, विज्ञापन विवाद: संदेश पर संदेह, आउटलुक, 29 नवम्बर 2021.

19. त्यागी, मृदुल, संस्कृति की जड़े काटेंगे और जेब भी, पाञ्चजन्म, नवम्बर 1, 2021.

20. राम, लक्ष्मी देव, विज्ञापन विवाद: संदेश पर संदेह, आउटलुक, 29 नवम्बर 2021.

21. शिवानी, पूँजीवाद में विज्ञापनों की विचारधारा और पूँजीवादी विचारधारा का विज्ञापन, नान्दीपाठ-3, अप्रैल-जून 2016.

22. हेर्न, प्रो० पुनीता, विज्ञापन: उपभोक्ता संस्कृति और सामाजिक बदलाव का संस्थान, कम्यूनिकेशन टुडे, 29 सितम्बर 2016.

23. शिवानी, पूँजीवाद में विज्ञापनों की विचारधारा और पूँजीवादी विचारधारा का विज्ञापन, नान्दीपाठ-3, अप्रैल-जून 2016.

DR. SHIKHA SHUKLA